नागरी पत्रिका

वर्ष २४ अंक ८,९ नवंबर, दिसंबर १९९१ ई०

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

मूल्य : रु० २-०० प्रति अंक

रु० २०-०० वार्षिक

संपादक : सुधाकर पांडेय

संपादक मंडल :

डॉ० लक्ष्मीशंकर व्यास, विश्वंभरनाथ द्विवेदी

डॉ० विजयपाल सिंह, डॉ० शितिकंठ मिश्र

डॉ० जितेंद्रनाथ पाठक, डॉ० मोहनलाल तिवारी

डॉ० शकुंतला शुक्ल

दिल्ली कार्यालय : डॉ० पद्माकर पांडे

१ ए, सुनहरीबाग रोड, नई दिल्ली।

१–संपादकीय १

२–प्रधानमंत्री कार्यालय का पत्र २

३–विमल मित्र : संस्मरण और संदेश ३
––डॉ लक्ष्मीशंकर व्यास

४–साक्षात वार्ता : सुधाकर पांडेय से ५
––अशोक लव

५–हिंदी काव्य भाषा के विकास में ···
––कृपाशंकर पांडेय ९

६–सवानेह–उमरी
––चौधरी गिरीशचंद ११

७–आधुनिक उपाधिलीला के पक्ष में ···
महाकवि पैरुडीदास १५

८–नई कविता की आंधी में भी ···
––चिरंजीत १७

९–श्री जैनेंद्र का एक भाषण जो ··· २०

१०–'अज्ञेय' के पत्र : विनोदशंकर व्यास ··२२

११–परीकथाओं का दानव : कुछ प्रश्न ···
––अर्चना उपाध्याय २४

१२–स्व० शंभुनाथ सिंह : रसनिर्झर स्तब्ध
––इंदुकांत शुक्ल २६

१३– हास्य रसावतार : बेढब बनारसी
––सुभाषिणी सिंह 'मंजू' २८

१४–नवगीत में लोक चेतना
––डॉ० मधूलिका श्रीवास्तव ३०

१५–सर आशुतोष की सभा ३३

१६–साहित्यिक संसार में एक नई बात ३४

१७–फणीश्वर नाथ 'रेणु' और ··· ३७
––कु० अनीता राय

संपादकीय

वर्ष १९९१ का अवसान समीप है। स्वाभाविक है कि हम इस समय विचार करें कि इस बीच हिंदी पत्र पत्रिकाओं ने हिंदी और हिंदी पाठकों के लिए क्या कुछ किया है। कुछ अपवादों को छोड़कर हिंदी पत्रपत्रिकायें इतनी अल्पजीवी होती हैं कि वे हिंदी पाठकों के स्तरोन्नयन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डाल पातीं। इसके लिये हम कभी सरकार को, कभी अंग्रेजियत को और कभी अपने पाठकों को जिम्मेदार ठहराते हैं, परंतु प्रश्न यह है कि क्या हमने अपने पाठकों को जिनका ८० प्रतिशत गांवों में रहता है, ध्यान में रखते हुए ईमानदारी से उनकी रुचि को जागृत करने वाली लोकोपयोगी सामग्री उन्हें सुलभ कराई है। सच तो यह है कि अधिकतर पत्रपत्रिकायें जाने अनजाने नागर जीवन को अपना लक्ष्य मानकर चलती है। इसलिए हिंदी पत्रपत्रिकाओं के पाठकों की संख्या खासतौर से खरीदकर पढ़नेवालों की संख्या अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में आबादी के अनुपात को देखते हुए काफी कम होती है। इसके लिए हिंदी भाषा क्षेत्र की गरीबी एक हद तक जिम्मेदार हो सकती है, किंतु इससे बड़ा कारण हिंदी पाठकों के पास नवीन जीवन पद्धति और रहन सहन के उन्नत स्तर की सूचनाओं का अभाव है जिसके लिए 'मीडिया' विशेषतया पत्रपत्रिकायें जिम्मेदार हैं। उनको नागरिक सुविधायें उपलब्ध

परीकथाओं का दानव : कुछ प्रश्न चिह्न

—अर्चना उपाध्याय

▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲

'राजकुमार अपने चमकीले घोड़े पर बैठा और उसने उसके कान उमेठे। घोड़ा हवा से बातें करने लगा। धूप कुछ ज्यादा ही तेज थी और आकाश मेघविहीन था, इसलिए चिलचिलाहट अधिक थी। राजकुमार ने घोड़े की दाहिनी आँख में उँगली डाल कर दबाया और उसके ऊपर एक नीली छतरी तन गई; घोड़े की बाईं आँख में उँगली डालने पर शीतल हवा के झोंके उसे सराबोर करने लगे। उसे अपने घर की याद आई। उसने सामने पड़े दर्पण का एक पेंच छुआ ही था कि उसके घरपर हो रहे सभी क्रिया कलाप दर्पण पर सजीव हो उठे ....'।

यह किसी परीकथा का अंश नहीं है, अपितु २०वीं शताब्दी में ही घटित हो रही बातों का वृत्तांत है। अब महाभारत का आँखों देखा हाल सुनाने के लिये किसी संजय की आवश्यकता नहीं; भू-उपग्रह तथा दूरदर्शन पर्याप्त हैं। अयोध्या का नरमेध यज्ञ भारतवासियों को देखने का गौरव मिला हो या न मिला हो, कतिपय सूत्रों का कथन है कि अमरीकावासियों ने सूचिकापात से लेकर रक्तपात तक आद्योपांत देखा। अब तो ऐसी रेलें भी हैं जो पटरियों से ऊपर बिना पहियों के उड़ते हुए चलती हैं (सुपर कन्डक्टर); जलयान पानी के भीतर से मछलियों की भाँति चल सकतीं हैं। (पनडुब्बी); कृत्रिम रक्त का आविष्कार रक्त प्रत्यारोपण में हमें पर-निर्भरता से उबार सकता है (जापान); ब्रह्मास्त्र को जवाबी ब्रह्मास्त्र द्वारा अन्तरिक्ष में ही समाप्त किया जा सकता हैं (पैट्रियाट); कुछ भी असम्भव नहीं रहा सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी विज्ञान के लिये। अद्‌भुत है यह सृष्टि ! मानव की आदिम खोज रही है सौंदर्य। और विज्ञान ने इस सौंदर्य को अक्षुण्ण रखने के हर साधन मानव को उपलब्ध कराए हैं।

६ अगस्त १९४५—

फूल की तरह से छोटे छोटे बच्चे अपनी किटी पार्टी के बाद चहकते हुए घर लौट रहे हैं 'सायोनारा' गाते हुए। उन्हें कल पिकनिक पर जाना है, उनके होठों पर स्मित मुस्कान है और आँखों में कल के मनोरम दृश्यों की स्वप्निल चमक। कुछ फौजी अपनी अपनी नृत्य पार्टनरों को विदा देकर दूसरे दिन पुनः मिलने का वादा करते हैं। नृत्यांगनायें उछलती किलकती अपने घर जाती हैं तथा फौजी अपने चुस्त कसरती शरीर लिए जाते हैं बैरकों की ओर। सड़क रंग बिरंगी कारों, गाड़ियों आदि से भरी हैं तथा पूरा शहर एक विशाल मण्डप की तरह प्रकाशित है। लाउडस्पीकर पर कोई गीत बज रहा है। सड़क पर चलती जवानों की टोली थिरकने लगती है। दूर, आकाश में एक जहाज की घूँ घूँ की परिचित आवाज भी इन ध्वनियों में मिलती है। शहर में एक जीवन, एक स्पन्दन और एक आशा है। जहाज करीब आता है। कुछ बच्चे अपने अपने छतों से ताली पीट पीट कर उस जहाज को देखते हैं।

तभी जहाज से कोई चमकीली चीज शहर के ऊपर आती और .... सभी सुंदर दृश्य पलक झपकते झपकते इतिहास का हिस्सा हो जाते हैं।

नौ अगस्त को यही घटना दूसरे शहर में भी घटती हैं सौंदर्य महाकाल का ग्रास बन जाती है हिरोशिमा व नागासाकी अपनी युवावस्था में ही अणुशक्ति के कोप-भाजन हो जाते हैं। दो जीवाश्म पूर्ण पुरुष होने के पूर्व ही काल कवलित हो गए।

३ दिसम्बर १९८४

पूरा शहर निद्रानिमग्न है। शीतल हवा चल रही है। मजदूरों को कल तड़के काम पर जाना है। यह शहर अद्‌भुत है। इसने कोई रोग नहीं देखा, कोई व्याधि नहीं देखी। कमाना और खाना। तभी एक सीटी की आवाज

जैसे इंजन से भाप निकले और निद्रानिमग्न शहर चिर-निद्रानिमग्न लोगों का शहर हो जाता है। जो बचते हैं, उन्हें रश्क है अपने २५०० चिरनिद्रा विलीन भाइयों के भाग्य पर और पछतावा है अपने जीवित बचने पर। भोपाल के अश्रु, लोलुप सभ्यता के अश्रु भी हैं।

२६ अप्रैल १९८६

पहाड़ी वादियाँ, पर्वती झरने, उपत्यका में बसा एक स्वप्न लोक, विशाल चेर्नोबिल से कुछ गैस वातावरण में मिला और छोड़ गया एक स्थायी भय, अंधेपन, चर्मकैंसर तथा क्षय रोग का।

आज विज्ञान ने मानव को एक परी देश में बसा दिया है। आज से केवल पाँच दशक पूर्व का हमारा पूर्वज आज अचानक जी उठे तो शायद वह सुखद आश्चर्य से ठगा सा आँखें फाड़े, चतुर्दिक देखता रहे। जीवन का सजीलापन देखकर कौन है जिसको जिजीविषा न बढ़ जाय ! पर दूसरी लोमहर्षक तस्वीर भी तो इसी विज्ञान की देन है। यह विज्ञान मनीषी द्वारा पालित उस जिन्न की भांति हो गया है जो हर समय किसी कार्य में व्यस्त न रखे जाने पर अपने स्वामी को ही खा जाने के लिए उद्यत था। मानव का संकट यही है कि यदि अच्छाइयों को भोगना है तो उसका मूल्य भी उसे ही चुकाना है। पराकाष्ठा व समृद्धि की अंधी दौड़ के परिणाम समष्टिगत रूप से मानव को ही समेटने हैं। पर परिणाम अधिक निराशाजनक, पीड़ादायक व मारक तभी होते हैं जब उद्दाम इच्छायें उचितानुचित व शीलता की अमूर्त सीमाओं का अतिक्रमण करदें। उत्तरदायित्व है वैज्ञानिकों, नव धनिकों प्रशासकों तथा राजनयिकों का कि वे स्वयं को अतीत व भविष्य के मध्य की एक मृणाल कड़ी ही मानें न कि भविष्य के एकछत्र अधिपति तथा प्रत्येक उपभोग में इतना संयम अवश्य बरतें कि उपभोज्य उपभोक्ताओं को तुष्टि प्रदान करता ही रहे।

मानव जो आज अपने पूर्णवयस्क शिशु के ही हाथों कठपुतली बना है, इसके लिए वह स्वयं उत्तरदायी है। मानव मस्तिष्क का मानसपुत्र विज्ञान आज निर्माणकारी नहीं अपितु विध्वंसकारी हो गया है। इसके कुछ कारण हैं।

असमकालीनता की समकालीनता—

प्रागैतिहासिक युग से आज तक जो भी अन्वेषण अविष्कार हुए हैं, आज का मानव उनका उत्तराधिकारी है। आज समाज में तलवार, बर्छे, चाकू, मुग्दर भी उपस्थित हैं; बन्दूक, राइफल, मशीनगन स्टेनगन भी हैं; एटमबम, हाइड्रोजन बम, न्यूट्रानबम, व लेसर किरणें भी हैं। उसी तरह बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, पेट्रोलगाड़ी, कार, विमान व रॉकेट सभी साथ-साथ मौजूद हैं। यह एक अच्छा संकेत है। पर कष्ट की बात यह है कि कल (भूत) की पिछड़ी व आदिम मानसिक बुनावट भी आज के विकसित काल में एक ही साथ मौजूद है। अस्तु, मानव नूतनतम हथियारों से अपनी आदिम लिप्सा (लोभ, क्रोध, हिंसा, प्रतिहिंसा, लूट आदि) की तुष्टि करता रहता है। यह शुभ संकेतक अशुभ-फलदायी होकर रह गया है।

मानसिक गुणों का असमान विकास—

यही हैं वह कारण जो युद्धों क्रान्तियों, हिंसा व अस्तव्यस्तता की जननी है। मानव ने विज्ञान व तकनीकि में जितनी प्रगति की है, उतनी वह नीतिशास्त्र व प्रशासन सौष्ठव में नहीं कर पाया है। परिणामतः एक ऐसे शिशु को जन्म मिला है जो ताकत का अपूर्व भण्डार अपने अंदर रखे है पर उसे अपने अंगों का उचित व नियन्त्रित संचालन ज्ञात नहीं है। परिणति सर्वविदित है—एक पूर्ण विकसित दो वर्ष के शिशु के हाथों ए० के० ४७ पड़ जाने की दुःखद व आत्मघाती परिणति श्लाघनीय तो नहीं ही है।

विज्ञान ने जीवन की आशा (life expectancy) में आश्चर्यजनक महारत हासिल की है। रोगोपचार तथा उन्मूलन द्वारा उसने एक ओर शिशु मृत्यु दर में कमी लाई है, तो दूसरी ओर वृद्ध मृत्यु दर (old age mortality) पर भी नियन्त्रण करने में आश्चर्यजनक सफलता पाई है।

'माल्थस' के अनुसार हमारी जनसंख्या में उत्तरोत्तर ज्यामितीय वृद्धि होती है जबकि खाद्यान्न उपार्जन में वृद्धि केवल गणितीय दर से होती है।

(शेष पृष्ठ २७ पर)

भर गई दिशायें', 'शीशे के ट्यूबों में भर लो। भटक रहे आवारा मन को।' उनके बिम्ब ('जीवन ज्यों दरवाजे के पल्लों में दबी उंगली', 'मृत्यु का पठार जहां फैला पथरीला है। जहां दर्द नीला है। वहीं कहीं मैं हूँ') तल्खी के सार्वभौम, सर्वकालीन अनुभव हैं। हम 'आदमकद कॉच के खिलौने। टूटेंगे यों ही। ये टूटेंगे।' किंतु छविप्रवणता की स्वर्णरश्मि इन अंधेरों को भी कभी-कभी अवश कर देती है : 'तारों की सीढ़ियां' उतरना कवि का अर्जित अधिकार है, ठीक जैसे जीवन का विषपान उसकी विवशता, जो उसे समकालीन और साधारण बनाती है। तभी वह समर्थ बनता है : 'बनाता ईंगुरी सुबहें बनाता सुरमई शामें। रहा रँगता दिनों को मैं, कभी हल्का कभी गहरा।' वह चितेरा बादल था डा० शंभुनाथ सिंह।

अवध की अमराइयों में डूबा उनका मन लोकगीतों से आप्लुत था : 'आंखड़ियों से झरते लोर, देखेगा कौन ? बगिया में नाचेगा मोर, देखेगा कौन ?' वे पुरइन और पोखर, झूला और झूमर, कजरी और काजर होना चाहते थे-जो सबका शृंगार करे, सबको रसमय करे।

उनका एक गीत है 'वक्त की मीनार पर।' जैसे उनके जीवन का सामग्रिक प्रतिनिधि, उनके रचनाकार का रूपायन। रूमान के साथ, बोध और विषाद की त्रिवेणी। मधुर, करुण का समन्वय।

इन झरोखों से लुटाता उम्र का अनमोल सरमाया
मैं दिनों की सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ ऊपर चला आया
हाथ पकड़े वक्त की मीनार पर संग-संग खड़ा हूँ
मैं तुम्हारे साथ हूं हर मोड़ पर संग-संग मुड़ा हूं

अध्यापन, लेखन, सम्पादन प्रकाशन, यदा-कदा आंदोलन (वाराणसी में 'आकाशवाणी' का केन्द्र खुले, तदर्थ उन्होंने अभियान चलाया था) से संकुल, कृती और कर्मठ शंभुनाथ जी की जीवन यात्रा ७५ वर्ष पूरे कर समाप्त हो गई। किंतु हिन्दी की गीतिपरम्परा को वे जिन ऊंचाइयों तक ले गए, वहां तक पहुंच पाना बहुतों के भाग्य में न होगा। उनकी गीत की पक्षधरता का आंदोलन, उसके नायक की भूमिका का निर्वहन, मात्र एक विधा विशेष से अनुराग या आसक्ति का प्रतीक न था। वह एक वृहत्तर संदर्भ से जुड़ने का, अपनी भक्ति काव्य की विरासत संभालने का, परम्परा से पुनीत और अर्थवान् होने का आग्रह था। इसमें आधुनिकता का निषेध न था, वरन् अनर्गलता का, मूल-हीनता-मूल्यहीनता का प्रत्याख्यान प्रतिषेध था। विघटन, वृश्रृखलता के विरुद्ध छांदसिक अनुष्ठान।

यह समीक्षा का अवसर नहीं। उन्हें 'अपने इतने पन का पता' था। यह आत्मस्वीकृति महनीय है। हममें से कितने, ठकुराई के साथ, जीवनावसान पर, कह सकेंगे : 'मैं अपना सा एक स्वर रहा हूं।' वह स्वर हिन्दी काव्य का गौरव है, उनके अमरत्व की मुद्रा।

'हर अगाये गीत की झंकार में' तुम।
अंतिम प्रणाम।

▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲

(पृष्ठ २५ का शेषांक)

इस प्रकार विज्ञान की सहायता से अतिशय पर अल्प समय में लाभ की आकांक्षा एक ऐसी स्थिति को जन्म देती है जिसकी चरम परिणति है एक ऐसी वनस्पतिविहीन धरा जो चन्द्रमा की भाँति निर्जीव है।

आवश्यकता है कि विज्ञान उनका निराकरण भी करे अस्तु वैज्ञानिकों की यहाँ दोहरी जिम्मेदारियाँ है-नये आयामों की खोज व उनके द्वारा जनित समस्याओं का निराकरण। यह निश्चित है कि कोई भी प्रशासन किसी समस्या को सुलझाने में पूर्णतः सक्षम नहीं हो सकता क्योंकि यह सर्वविदित है कि प्रशासक आने के कुछ वर्ष बाद तक पुराने सिद्धांतों को मिटाने व शेष समय नये सिद्धांत बनाने में ही व्यतीत करते हैं, पर एक नए दानव का जन्म हो चुका है। पूर्व उसके कि वह अपना ग्रास सभी को बनाये, आवश्यकता है किसी ऐसे विज्ञ की जो उसे नाथ सके। ओजोन आवरण में छिद्र हो चुका है समुद्री जीवन युद्धोन्माद में संकटापन्न हैं; नई नई व्याधियाँ जन्म लेती जा रही है; दानव करवट ले रहा है। यदि समय रहते इसे नियन्त्रित नहीं किया गया तो कुछ हजार वर्षों के बाद अगले कलियुग के लोग हमारे विषय में कहेंगे-उनकी रक्तपिपासु अदूरदर्शी संतान।